लोहे की जालियाँ

हिन्दी ADDA

राम नगीना मौर्य

लोहे की जालियाँ

"देखिए, आप रोज कोई-न-कोई बात कह कर मुझे बहंटिया देते हैं, काम के बहाने टाल जाते हैं। कितनी बार कहा कि ऑफिस से लौटते वक्त, अपने पुराने मकान-मालिक अवनींद्र बाबू के घर चले जाइए। मच्छरों, कीट-पतंगों से बचने वास्ते हमने अपनी

गाढ़ी कमाई के पैसों से उनके मकान के दरवाजे, खिड़कियों में लोहे की जो जालियाँ लगवाई थीं। उस मकान को छोड़ते, अपने इस नए मकान में आते वक्त तत्काल कोई मिस्त्री न मिलने के कारण हम वो जालियाँ निकलवा नहीं पाए थे। लोहे की उन जालियों के बारे में अवनींद्र बाबू का क्या कहना है...? यही पूछ आते।"

"अऽरे भई, मुझे अच्छी तरह याद है। हमने अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से ही वो जालियाँ लगवाईं थीं। अवनींद्र बाबू से तो मैंने एक-दो बार बात भी चलाई थी कि मकान छोड़ते समय हम वो जालियाँ निकलवाएँगे नहीं, बशर्ते कि वो उन जालियों के पैसे मकान किराये में एडजस्ट कर लें। लेकिन उन्होंने मेरे इस प्रस्ताव पर कोई अभिरुचि ही नहीं दिखाई। जब मकान-मालिक ने किराये में एक पैसे की रियायत नहीं दी तो हम क्यों रियायत दिखाने लगे...?"

"तो उन जालियों को निकलवाने के बारे में आप रोज-रोज नए प्रवचन ही देते रहेंगे, या इस दिशा में कुछ फलदायक, रचनात्मक काम भी करेंगे...? आपको याद होगा... अवनींद्र बाबू का वो मकान जब हमने किराये पर लिया था, तो उस मकान की क्या दशा थी? बिजली की सारी वॉयरिंग-फिटिंग और बिजली के बोर्ड तक उखड़े पड़े थे। गरज हमारी थी, सो हमने ही सारी वॉयरिंग-फिटिंग और बोर्ड आदि अपने पैसे खर्च कर लगवाए थे। तब कहीं जाकर वो मकान रहने लायक हुआ था। वो तो शुक्र मानिए मकान मालकिन का कि उनसे चिरौरी-विनती पर वो किराए के पैसों में, वॉयरिंग-फिटिंग और बोर्ड के खर्चे को एडजस्ट करने के लिए तैयार हो गई थीं। आप हैं कि अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से लगवाई गई उन जालियों को निकलवाने में भी संकोच कर रहे हैं।"

"अऽरे भई, उधर जाना चाहता तो मैं भी हूँ, पर क्या करूँ, ये मार्च का जो चक्कर है, दम लेने की भी फुर्सत नहीं है। तिस पर अभी नया-नया प्रमोशन है, छुट्टी लेना भी ठीक नहीं है। किसी संडे वाले दिन ही उधर जाना हो सकेगा। वो लोहे की जालियाँ तो हमारे गले की तौक हो गई हैं।"

"आप ऐसा क्यों नहीं करते, अवनींद्र बाबू से फोन पर ही बात कर लीजिए कि वो जालियाँ अब आपके किसी काम की नहीं रहीं। अपने मकान में तो हमने सभी दरवाजे, खिड़कियों पर जालीदार पल्ले आदि लगवा ही रखे हैं। अगर वो उन जालियों के पैसे नहीं दे सकते तो, उस मकान में उन्होंने जो नया किरायेदार रखा हो, उसी से हमें पैसे दिलवा दें, और उसे अपने किराये में एडजस्ट कर लें।"

"अवनींद्र बाबू को तो तुम अच्छी तरह जानती हो कि वे कितने काइयाँ किस्म के इनसान हैं। टूटी-फूटी सड़कें, बजबजाती नालियों, संकरी गली वाले उस बदबूदार मुहल्ले में हमने सात साल कैसे काटे हैं, ये हमसे बेहतर कौन जानता होगा। मच्छर, कीट-पतंगों के आतंक की ओर बार-बार ध्यान दिलाने पर भी अवनींद्र बाबू के कान पर जूँ नहीं रेंग रहे थे। अंततः थक-हार कर हमें ही अपने पैसों से उस मकान के सभी खिड़कियाँ, दरवाजों पर लोहे की जालियाँ लगवानी पड़ी थीं। पूरे पाँच हजार खर्च हुए थे।"

"आप उनसे इस बारे में किसी दिन उनके घर जाकर इत्मिनान से बात कर लीजिए। अऽरे, चार हजार ही दे दें, या उनके नए किरायेदार को ही सारी बातें बताते इस बारे में बात कर लीजिए। क्या पता, उनके नए किरायेदार से बात करने में ही कोई समाधान निकल आए...?"

"तुम्हारा ये सुझाव तो ठीक है। अगर वो इस पर भी नहीं माने तो मैं किसी दिन कोई लोहार या मिस्त्री लेकर जाऊँगा, और लोहे की अपनी वो सभी जालियाँ उखड़वा ले आऊँगा।"

"हाँ, अब आपने मेरे मन की बात कही। मैंने तो कितनी बार कहा कि आपकी अकल जब चरने चली जाए तो कभी-कभी मुझसे भी थोड़ी अकल उधार ले लिया कीजिए। हाँ, एक बात और... अगर आपसे इस मुश्किल का समाधान न निकल सके तो बताइएगा, मैं ही चल कर अवनींद्र बाबू की पत्नी से बात कर लूँगी। पर... एक बात और भी गौरतलब है। अब उन जालियों की हमारे लिए कोई उपयोगिता नहीं है, ऊपर से लोहार या मिस्त्री की दिहाड़ी अलग से देनी पड़ जाएगी। आप कोशिश कीजिएगा कि किरायेदार या मकान-मालिक में से किसी से भी, हमें हमारे पैसे ही मिल जाएँ।"

"ठीक है। मैं कुछ करता हूँ। वैसे भी कल छुट्टी है, और संजोग से भइय्या के काम से कल उधर ही जाना भी है।"

पत्नी संग उपरोक्तानुसार बातचीत के उपरांत मैं अगले दिन शाम को मकान-मालिक, अवनींद्र बाबू के घर पहुँचा, और उनके दरवाजे पर दस्तक दी।

"कौन है वहाँ, दरवाजे पर...?" कमरे के अंदर से अवनींद्र बाबू ने आवाज दी थी।

"अवनींद्र बाबू, दरवाजा खोलिए। मैं सत्यजीत हूँ। आपका पुराना किरायेदार।"

"अच्छा! आप हैं, सत्यजीत बाबू। बहुत दिन बाद दिखाई दिए। अचानक... इधर कैसे आना हुआ...? बहू कैसी है, और बच्चे कैसे हैं...? छोटा वाला लड़का तो अब बड़े क्लॉस में चला गया होगा, और डॉली बिटिया के तो इंटर के रिजल्ट भी आ गए होंगे?" अवनींद्र बाबू ने दरवाजा खोलने के साथ-साथ ही, अपनी आदत के अनुरूप यके-बाद-दीगरे, मुझसे ढेर सारे प्रश्न कर डाले।

"अऽरे, भाई सत्यजीत बेटे को अंदर बुलाकर बिठाएँगे भी कि दरवाजे पर खड़े-खड़े ही पूछताछ करते रहेंगे? रिटॉयर हो गए हैं, लेकिन मास्टरी की आदत अभी तक गई नहीं।" मैं उनकी बातों का कुछ जवाब देता कि अंदर आँगन से अवनींद्र बाबू की पत्नी, सुरेखा जी ने आवाज दी।

"आओ-आओ भई। अंदर आ जाओ। बताओ कैसे आना हुआ?" अवनींद्र बाबू ने दरवाजे के एक तरफ हटते, मुझे अंदर कमरे में बुला कर बिठाया।

"बड़े भाई साहब का कुछ काम था, यहाँ अमीनाबाद में। इधर आया तो आप लोगों की भी याद आ गई। सोचा, क्यों न आप लोगों से मुलाकात कर ली जाए। काफी समय हो गया था मुलाकात किए। सोचा, इसी बहाने आप लोगों का हाल-चाल भी लेता चलूँगा।" मैंने मेहमानखाने में रखे, टीक के पुराने, जाने-पहचाने सोफे पर बैठते हुए कहा।

"बहुत अच्छा किया भई। तुम लोग आते रहा करो। तुम तो जानते हो, बिन्नू हमारी इकलौती बेटी थी। उसकी शादी के बाद, अब घर का सूनापन काटने को दौड़ता है।"

"सत्यजीत को अपनी राम कहानी ही सुनाते रहेंगे कि उसे चाय-वाय के लिए भी पूछेंगे?" आँगन से ही अवनींद्र बाबू की पत्नी ने उन्हें एक बार फिर टोका।

"हाँ भई, चाय-वाय तो पियोगे न? जल्दी में तो नहीं हो?" पत्नी के टोकने पर अवनींद्र बाबू ने मुझसे पूछा।

"जी! लेकिन, मेरी चाय में शक्कर की मात्रा कम ही रहेगी।"

"सुरेखा, जरा कम शक्कर वाली चाय, और उसके साथ थोड़ी नमकीन भी ले आना।" अवनींद्र बाबू ने मेहमानखाने से ही पत्नी को आवाज दी।

"आपने आज फिर अपनी सुनने वाली मशीन आँगन में ही तिपाई पर छोड़ दिया है। इसे लगा लीजिए, नहीं तो सत्यजीत की आधी बातें सुनेंगे, आधी बातें अनसुनी

करते... आँय-आँय करते रहेंगे।" अवनींद्र बाबू की बातों की अनसुनी करते उनकी पत्नी ने पुनः आवाज दी।

"यहीं लाकर दे दो। आज सुबह से ही घुटनों में बहुत दर्द है। बार-बार उठने-बैठने, चलने-फिरने में दिक्कत हो रही है।"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं? मेरे घुटने तो अभी भी सोलह साल की उम्र वाले हैं। मुझे तो कोई परेशानी होती नहीं। अंदर किचन में आइए। चाय, खुद से ले जाइए, और आँगन से अपनी कान में लगाने वाली मशीन भी।" अवनींद्र बाबू की पत्नी ने उन्हें एक बार फिर से प्यार भरी झिड़की देते टोका।

"अच्छा भई... आता हूँ।" कहते, थोड़ी मुश्किल से कुर्सी से उठते, मुझे मेहमानखाने में अकेला छोड़, अवनींद्र बाबू अंदर किचन में चले गए। अवनींद्र बाबू के वहाँ से जाने के बाद मैंने मेहमानखाने में एक उड़ती निगाह डाली। अवनींद्र बाबू के मेहमानखाने में मैंने पिछले सात-आठ सालों में कोई खास तब्दीली नोटिस नहीं की थी। ... 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत...' के मानिंद हर आगंतुक को प्रेरित करती, मेरे सामने की दीवाल पर स्वामी विवेकानंद जी की फोटो आज भी बदस्तूर, लगी दिखी। वर्षों पुराने टीक के सोफे पर गहरे भूरे रंग के कपड़े का कवर, अभी भी दिख रहा था। सामने नक्काशीदार गोल-मेज पर, एक कोने से हल्का टूटा ग्लॉस भी वैसे ही रखा था।

मुझे याद है, तब मेरी बेटी छोटी ही थी। एक बार, अवनींद्र बाबू के मेहमानखाने में पेपरवेट से खेल रही थी। साथ ही टी.वी. पर आ रहे गाने... "हिंद देश के निवासी सभी जन एक हैं। रंग-रूप वेश-भाषा चाहे अनेक हैं।"... को तोतली भाषा में, गुनगुनाते, सस्वर अभिनय करती जा रही थी कि अचानक लड़खड़ा जाने पर उसके हाथ से पेपर-वेट छूट कर इस टेबल पर गिर गया था, जिससे ग्लॉस का एक कोना हल्का सा टूट गया था, जो बतौर निशानी, आज भी मौजूद है।

इसी बीच मुझे अंदर के कमरे से कुछ खुसर-फुसर सी आवाजें सुनाई दी। मैं सचेत हो गया, और उधर ही कान लगाकर सुनने लगा। "पता नहीं ये अब यहाँ क्या लेने आया है?" मैंने ध्यान दिया, आवाज अवनींद्र बाबू की ही थी, जो अपनी पत्नी से फुसफुसाते हुए बतिया रहे थे। "आप तो बिलावजह ही सभी पर शक करते रहते हैं। अऽरे, चौक वाले हमारे मकान में ये लोग लगभग सात साल किराये पर रहे हैं। अभी नई जगह पर एडजस्ट करने में दिक्कत हो रही होगी। क्या पता इसे हमारी याद आ रही हो, तभी तो ये हमसे मिलने आया है। आप ये चाय ले जाइए और कोई आशंका-वाशंका मत पालिए। निश्चिंत रहिए।" कहते अवनींद्र बाबू की पत्नी ने उन्हें आश्वस्त किया।

चाय तैयार हो गई थी। अगले पाँच-छः मिनट बाद, अवनींद्र बाबू एक ट्रे में दो चाय के भरे कप और भुनी हुई मूँगफलियों के एक प्लेट के साथ मेहमानखाने में नमूदार हुए। मैंने ध्यान दिया, उन्होंने अपने दाहिने तरफ वाले कान के पीछे सुनने वाली मशीन भी लगा रखी थी।

"लो भई, चाय पियो और बताओ, तुम्हारे बाल-बच्चे कैसे हैं?"

"जी, आप लोगों के आशीर्वाद से सभी ठीक-ठाक, स्वस्थ हैं। आंटी जी को भी बुला लीजिए। उनसे भी मुलाकात हो जाए।" अपने मुद्दे पर विचार साझा करने के तईं मैंने उनकी पत्नी को भी इस बातचीत में शामिल करना उचित समझा।

"अऽरे भई सुरेखा, तुम भी आ जाओ।" अवनींद्र बाबू ने पत्नी को आवाज दी। अगले दो-चार मिनट बाद अवनींद्र बाबू की पत्नी सुरेखा जी भी, अपने हाथ पल्लू में पोंछते, मेहमानखाने में हाजिर हुईं।

"अऽरे! तुमने तो कुछ खाया-पिया ही नहीं?" मेहमानखाने में हाजिर होते ही उन्होंने मुझे टोका।

"जी, अभी अमीनाबाद की तरफ से लौटा हूँ। वहीं एक जनाब के पास चला गया था। उन्होंने वहाँ की मशहूर कचौड़ियाँ और कुल्फी खिला दी। पेट अभी भी भरा हुआ है। कुछ खाने का मन नहीं कर रहा। आपके हाथ की अदरक-कालीमिर्च वाली चाय पिये बहुत दिन हो गए थे, सो मैं ये चाय ही पी लेता हूँ।"

"इतने दिनों बाद हमारी याद कैसे आई?" अवनींद्र बाबू की पत्नी ने सामने की कुर्सी खींच कर बैठते हुए पूछा।

"जी, आपको ध्यान होगा, आपके चौक वाले जिस मकान में हम किराये पर रहते थे, आप लोगों की अनुमति लेकर, मच्छर, कीट-पतंगों से बचाव वास्ते हमने उस मकान के सभी दरवाजे, खिड़कियों के पल्लों पर लोहे की जालियाँ भी लगवाईं थीं।"

"हाँ-हाँ, हमें अच्छी तरह याद है। आपने अपने हाथों ही उनकी पेंटिंग भी कर दी थी, ताकि उन पर जंग न लगे। आपने बहुत अच्छा काम किया था। ये काम तो हमारे वश का था ही नहीं।"

"अभी वहाँ, क्या कोई किरायेदार रहता है?"

"हाँ-हाँ, एक मिस्टर सक्सेना जी रहते हैं। यूनिवर्सिटी में लेक्चरर हैं। सपरिवार रहते हैं। अभी बाल-बच्चे नहीं हैं। उनकी नई-नई शादी हुई है। हम लोगों से तो महीने-पंद्रहियन... मिलने आते ही रहते हैं।"

"जी, आपको तो पता ही है, उस मकान के सभी दरवाजे, खिड़कियों के पल्लों पर लोहे की जालियाँ लगवाने में हमारे लगभग पाँच हजार रुपये खर्च हो गए थे। अब उन जालियों को निकलवाने में मिस्त्री का खासा खर्च भी आ जाएगा। पत्नी, माधुरी भी जालियाँ निकलवाने के पक्ष में नहीं है। यदि आप लोगों की अनुमति हो तो मैं आपके नए किरायेदार से इस विषय पर बात कर लूँ कि वो हमें उन जालियों के पैसे दे दें, और आप उन्हें किराये में एडजस्ट कर लें। अथवा यदि उचित समझें... तो मुझे उन जालियों के वाजिब पैसे आप ही दे दें। आजकल पैसे की बड़ी किल्लत हो गई है। इधर बीच बिटिया को कोचिंग-क्लॉस ज्वॉइन करवाया है। उसी में हमारे काफी पैसे खर्च हो गए।" अवनींद्र बाबू की पत्नी की सहृदयता को देखते, मैंने तनिक झिझकते-अटकते अपनी बात पूरी की।

"पर आपको देने के लिए इतने पैसे हमारे पास कहाँ? हाँ, जहाँ तक किरायेदार से पैसे लेने की बात है, तो पैसे देने या जालियाँ निकलवाने का निर्णय, किरायेदार महोदय को ही लेना होगा। फिर, ये आपके और उनके बीच का मामला है। भला इसमें हम क्या कर सकते हैं? किरायेदार महाशय यदि उन जालियों के बदले आपको पैसे देना चाहें, तो ले लीजिए, या यदि निकलवाने को कहें, तो निकलवा लीजिए। बेहतर होगा कि इस बारे में आप उन्हीं से बात कर लें। हमारी तरफ से कोई आपत्ति नहीं है।" इस बार तनिक अन्यमनस्कता दिखाते, अवनींद्र बाबू ने हस्तक्षेप किया।

"जी ठीक है। अब मैं निकलूँगा। कभी चौक की तरफ जाना हुआ तो आपके किरायेदार से इस बारे में अवश्य बात कर लूँगा। अभी तो देर शाम हो गई है। वैसे भी इस तरह के कामों के लिए किसी के घर शाम के समय जाना उपयुक्त नहीं रहता। नमस्ते।"

"जैसी आपकी मर्जी। नमस्ते।" मैंने अवनींद्र बाबू से घर जाने की इजाजत माँगी। मेरा अनुमान ठीक निकला। हमेशा की तरह अवनींद्र बाबू ने आज भी टाल-मटोल वाला ही रवैय्या अपनाया था।

अवनींद्र बाबू के घर से लौटने के बाद जाहिरन तौर मैंने पत्नी से आद्योपांत पूरा वाकया कह सुनाया। तत्पश्चात पत्नी के सुझावानुसार बिना किसी बिलंब के मैं अगले इतवार अवनींद्र बाबू के चौक स्थित नए किरायेदार से मिलने, उस मकान पर जा पहुँचा।

मकान का दरवाजा खटखटाने से पहले स्वाभाविक तौर मेरी निगाह दरवाजे-खिड़कियों पर लगी उन जालियों पर भी चली गई। दरवाजे, खिड़कियों की जालियों को, जिन्हें मैंने कभी खुद अपने हाथों पेंट किया था, देखा कि उनके रंग तनिक धुँधला से गए हैं।

"कौन है...?" दरवाजा खटखटाने पर, प्रश्न करने के साथ ही अंदर से एक महिला निकली, उसी ने दरवाजा खोला था।

"जी, मैं सत्यजीत। पहले मैं इसी मकान में किरायेदार था।"

"ठीक है। आप अंदर आ जाइए, बैठिए। मैं सुशांत को बुला रही हूँ।" कहते उस महिला ने मुझे ड्राइंगरूम में बिठाया, और अंदर चली गईं। मैं भी आदतन ड्राइंगरूम का मुआयना करने लगा। फर्नीचर के नाम पर कमरे में मात्र चार कुर्सियाँ और उनके बीच एक तिपाई रखी थी। बगल में छोटा सा दीवान, जिसके ऊपर साफ-सुथरा गावतकिया भी रखा था। मध्यम आय वर्ग वाले लोग लग रहे थे। मेरे द्वारा अपने पीछे की दीवाल पर पेंसिल से यूँ ही कभी किसी समय मजाहिया मूड में लिखा वो गाना... "खरखुट करती टमटम करती, गाड़ी हमरी जाए / फरफर दौड़े सबसे आगे कोई पकड़ न पाए।"...जिसे मिटाने की असफल कोशिश की गई थी, पर पठनीय था, हल्के धब्बे की तरह बदस्तूर कायम दिखा। छत का प्लॉस्टर अभी भी जगह-जगह से उखड़ा हुआ था, जिसकी रिपेयरिंग के लिए बार-बार अवनींद्र बाबू का ध्यान आकृष्ट कराने पर भी उनके कानों पर जूँ नहीं रेंगते थे।

"जी मैं सुशांत, और आप?" मेरे पीछे से आकर नए किरायेदार ने नमस्ते करते मुझसे हाथ मिलाया। उसे देखते ही मुझे नए किरायेदार का चेहरा कुछ-कुछ जाना-पहचाना सा लगा।

"अऽरे सुशांत! मैं सत्यजीत। पहचाना मुझे?" मैंने अपने जूनियर सुशांत को फौरन पहचान लिया, उसने भी इकनॉमिक्स डिपॉर्टमेंट में मेरे गाइड के अंडर में ही पी.एच.डी. के लिए एनरोलमेंट कराया था।

"अऽरे सर, कैसे नहीं पहचानूँगा आपको? आपने तो गाहे-बगाहे, मुझे गाइड सर से भी ज्यादा गाइड किया था। मुझे हॉस्टल मिलने तक आपने अपना रूम, लगभग छ महीने तक मेरे साथ शेयर भी किया था। यूनिवर्सिटी छोड़ने के बाद आप तो नैनीताल निकल गए थे, लेकिन मैंने अपनी पी.एच.डी. पूरी की थी।"

"व्हाट ए प्लीजेंट सरप्राइज? हमारी मुलाकात इतने समय बाद, इस तरह होगी, मैंने तो कल्पना भी नहीं की थी।"

"मुझे भी विश्वास नहीं हो रहा है सर।"

"पर, तुम यहाँ कैसे?"

"जी, मैं यहीं यूनिवर्सिटी में लेक्चरर हूँ। यूनिवर्सिटी के पास ही कोई सस्ता सा किराये का मकान ढूँढ़ रहा था। घूमते-घामते एक दिन इधर चौक की तरफ निकल आया। इस मकान के आगे 'टू-लेट' का बोर्ड दिखा। नीचे मकान-मालिक का मोबॉयल नंबर भी था। मैंने फौरन ही उस नंबर पर फोन मिलाया। बातचीत में हमारे बीच थोड़ी-बहुत औपचारिक जानकारी के आदान-प्रदान के बाद, मकान-मालिक हमें ये मकान किराये पर देने के लिए राजी हो गए। हालाँकि बातचीत में किराये को लेकर वो थोड़ा कंजूस और खड़ूस भी लग रहे थे, लेकिन बात बन गई। फिर अगले हफ्ते ही अपने सगरो साज-सामान के साथ मैं सपत्निक यहाँ आकर रहने लगा। बड़े मौके से मुझे ये मकान मिल गया।"

"अभी जिसने दरवाजा खोला था, वो तुम्हारी पत्नी ही थीं न?"

"जी सर।"

"अगर मैं गलत नहीं हूँ, तो ये वही सुनैना है न, जिसे तुम स्टैटिस्टिक्स का ट्यूशन देने जाते थे, और इस पर अपना रौब जताने के लिए बाजदफे मुझसे 'मीन-मिडियन-मोड' और 'को-रिलेशन' के कुछ कठिन सवालों पर डिस्कशन भी करते थे। राह चलते-चलते कभी-कभी इससे सामना होने पर इसे देखकर तुम अक्सर ही मजाहिया मूड में... "फुलगेंदवा न मारो... लगत करेजवा में तीर"... गुनगुना लेते थे?"

"अऽरे सर, वो भी क्या दिन थे। अब तो न वो फूल रहा, न वो गेंदा ही। अब तो सिर्फ चोट-ही-चोट बची है, और उसके निशान... हें-हें-हें।"

"हें-हें-हें।"

"अच्छा, आप चाय तो पिएँगे न?"

"नहीं, आज सुबह से ही पाँच चाय हो गई है।"

"ऐसा कैसे हो सकता है सर, आपसे इतने सालों बाद मुलाकात हुई है, और आप मेरे घर पर चाय-पानी भी नहीं लेंगे?"

"अच्छा, अगर ऐसी बात है तो तुम मुझे एक गिलास ठंडा पानी ही पिला दो।"

"आप बैठिए, मैं आपको अपनी माँ के हाथों बनाया बतीशा-मिठाई खिलाऊँगा। खालिस देशी घी में बना।"

"ठीक है भई। जैसी तुम्हारी मर्जी। तुम्हें पता है, बतीशा मेरी प्रिय मिठाइयों में से है?"

"मेरी भी। माँ तो अक्सर ही मेरे लिए बनाती है। आप भी खा कर देखिए।" कहते सुशांत ने फ्रिज में पहले से ही सजा कर रखी मिठाइयों की प्लेट मेरे सामने रख दी।

"हाँ वाकई! बहुत स्वादिष्ट हैं ये मिठाइयाँ। वैसे कितने दिन हो गए तुम्हें यहाँ रहते?" मिठाई खा कर पानी पीते, मैंने बात आगे बढ़ाई।

"अभी पिछले अक्टूबर में ही तो आया हूँ सर। पाँच-छ महीने तो हो ही गए होंगे।"

"जरा पंखा तेज कर दो, और खिड़कियाँ भी खोल दो, ताकि प्रकाश आए। आज काफी गर्मी है। चैत-बैशाख में ही ये हाल है तो पता नहीं जेठ-आषाढ़ में क्या हाल होगा?"

"अब पेड़-पौधे भी तो नहीं रहे सर। शहरीकरण की आपाधापी में चहुँओर क्रंक्रीट के ही जंगल दिखते हैं। वाबजूद इसके, गाँवों से शहरों की तरफ लोगों का पलायन इतनी तेजी से हो रहा है कि यहाँ रहने के लिए दो कमरे का ढंग का मकान भी मिलना मुश्किल है। लोग दड़बेनुमा मकानों में रहने के लिए मजबूर हैं। लेकिन मैं इस मामले में थोड़ा भाग्यशाली हूँ। इस मकान के दरवाजे, खिड़कियों में जालियाँ लगे होने के कारण सुबह-शाम हम दरवाजे और खिड़कियों के पल्ले खोल देते हैं। इससे अच्छी हवा तो आती ही है, और मच्छर, कीट-पतंगे आदि भी नहीं आ पाते। इस मकान में यही एक अच्छी सुविधा है।"

"हाँ... सो तो है...।" मैं उन जालियों के बारे में कुछ कहते-कहते रुक गया।

"मकान-मालिक ने बताया था कि उनके किसी पुराने किरायेदार ने ये जालियाँ लगवाई हैं। वो उन पुराने किरायेदार की बड़ी तारीफ कर रहे थे। आप इस मकान में कब रहे थे सर?" अपनी बातों के क्रम में ही सुशांत ने मुझसे ये प्रश्न किया।

"सात-आठ महीने पहले रहता था मैं यहाँ।"

"अभी आप कहाँ रह रहे हैं?"

"अब तो मैंने अपना मकान बनवा लिया है। यहीं अली नगर में।"

"ये तो बड़ी अच्छी बात है सर। मुझे तो अभी भी यकीन नहीं हो रहा कि वर्षों बाद आपसे मेरी मुलाकात इस तरह होगी। मैं आपका हमेशा एहसानमंद रहूँगा।"

"क्यों भइय्या? मैंने तुम पर कौन सा एहसान किया है?"

"अऽरे सर, आप भूल सकते हैं, मैं नहीं। बनारस में मुझे हॉस्टल मिलने तक, कहीं और ठौर-ठिकाना न मिलने पर मुझे हैरान-परेशान देख, आपने अपने हॉस्टल का कमरा मेरे साथ लगभग छ महीने तक शेयर किया था। कौन ऐसा करता है सर?"

"पर, तुम्हारे कुछ एहसान तो मेरे ऊपर भी हैं।"

"भला... मैं क्या किसी पर एहसान कर सकता हूँ सर?"

"शायद, तुम भूल रहे हो। तुम्हें याद होगा। उन्हीं दिनों मुझे परिवहन विभाग के एक इंटरव्यू में शामिल होना था। मेरे पास ढंग के जूते नहीं थे। मैंने तुम्हारे ही जूते पहन कर वो इंटरव्यू दिया था। मैं उसमें सफल भी हुआ। तुम्हारे जूते मेरे लिए बहुत लकी साबित हुए थे। ये अलग बात है कि कालांतर में मैंने वो नौकरी छोड़ दी थी। लेकिन पहली नौकरी के रूप में उसकी याद तो दिलो-दिमाग में अभी भी रची-बसी है। और-तो-और मैंने अपनी बहन की शादी में पहनने के लिए तुम्हारा ही कोट उधार लिया था। पता नहीं तुम्हें याद है कि नहीं?"

"आप मुझे शर्मिंदा कर रहे हैं सर। आपको पढ़ता देख कर ही तो मैं अपने कैरियर को लेकर संजीदा हुआ था, वरना तो उस वक्त मैं यूनिवर्सिटी में लाखैरा नंबर वन ही माना जाता था। आज मैं जो कुछ भी हूँ, जहाँ तक भी पहुँचा हूँ, सिर्फ आपकी ही बदौलत।"

"तुम्हें बताऊँ? मैं जब भी अपने बहन की शादी का एलबम देखता हूँ, तुम्हारी याद आ जाती है। उस एलबम में ग्रुपिंग के समय, अपने परिवार के सभी सदस्यों संग मैं वही कोट पहने खड़ा हूँ। तुम्हें ये जानकर आश्चर्य होगा कि ये बात, मेरे घर-परिवार के सदस्यों, यहाँ तक कि मेरी पत्नी को भी नहीं पता।"

"क्यों शर्मिंदा कर रहे हैं सर। पढ़ाई के दिनों में तो ये सब उधार लेना-देना चलता ही रहता है। पर आपने बताया नहीं कि आप, इधर कैसे आए थे?"

"कुछ नहीं बस्स... सिलाई-कटाई से संबंधित एक ठो कैंची खरीदने के लिए इधर चौक की तरफ आया था। कैंची खरीदने के बाद सोचा, अपने पुराने मकान को भी देख लिया जाए, और उत्सुकता ये भी थी कि देखा जाए, अब इस मकान में रहने के लिए कौन आए हैं। लगे हाथ उनसे भी मुलाकात कर ली जाए। यही सोच कर इधर चला आया था।"

"बड़ा अच्छा हुआ सर। हमें दुबारा मिलना लिखा था। ये मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। आप अक्सर किसी विद्वान की वो प्रसिद्ध उक्ति कहते रहते थे न... 'मनुष्य पैदा तो स्वतंत्र हुआ है, मगर हर जगह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।"

"ये बात तो सार्वकालिक है। सार्वभौमिक है। इससे भला किसे इनकार होगा...? अच्छा, अपनी पत्नी सुनैना से नहीं मिलवाओगे...?"

"जी, वो छत पर कपड़े सुखाने वास्ते, उन्हें अलगनी पर फैलाने गई है। छत पर गीले कपड़े ले जाते समय वो कपड़ों के पिन ले जाना भूल गई थी, वही लेने नीचे आई थी कि दरवाजे पर आपने दस्तक दे दी। दरवाजा उसी ने खोला था। मैं उस समय 'शेव' बना रहा था।"

"ठीक है, अब देर हो रही है। मैं चलता हूँ। किसी दिन अपनी पत्नी को लेकर घर आना।"

"जी, बिलकुल। आप अपना नंबर बताइए मैं 'सेभ' कर लेता हूँ। आने से पहले फोन कर लूँगा।"

"हाँ, नोट करो... नाइन फाइव... अच्छा छोड़ो, ऐसा करो तुम मुझे अपना नंबर बताओ, मैं मिस्सड-कॉल मार देता हूँ।"

"जी, नोट करिए... एट सिक्स जीरो...।"

"ठीक है, अब मैं चलता हूँ। घर जरूर आना।"

"जी बिलकुल। नमस्ते सर।"

"नमस्ते।" सुशांत से इस संक्षिप्त मुलाकात के बाद मैं घर आ गया।

"क्या हुआ? आज लौटने में इतनी देर कैसे हो गई?" उस शाम घर पहुँचने पर पत्नी ने पूछा।

"चौक की तरफ गया था। बहुत दिनों से तुम्हारी इच्छा थी न! सिलाई-कटाई वाली एक ठो बड़ी सी कैंची खरीदने की। मैंने सोचा कि क्यों न इसे बनाने वाली फैक्ट्री से ही खरीदी जाए? सस्ती रहेगी और मजबूत, टिकाऊ भी। उसके बाद चौक वाले किराये के अपने पुराने मकान की तरफ भी चला गया था।"

"अऽरे वाह! तब तो उस मकान के दरवाजे, खिड़कियों पर लगी जालियों के बारे में भी बात हुई होगी...?"

"जरा आराम से बैठने तो दो। सब बताता हूँ। एक गिलास ठंडा पानी दे जाओ, और जरा कम चीनी, अदरक, कालीमिर्च वाली एक ठो चाय भी बना देना। तब-तक मैं हाथ-मुँह धो लेता हूँ।"

"ये रहा ठंडा पानी। पर... अब तो खाना खाने का टाइम हो गया है। फिर चाय क्यूँ?"

"अरे भई, मन कर रहा है। अभी भूख नहीं लगी है। और हाँ! जरा दीदी की शादी का वो एलबम तो लाना।"

"एलबम क्यों?"

"क्या सारे सवालों के जवाब अभी चाहिए? एलबम ले आओ, फिर इत्मिनान से बैठ कर बताता हूँ।"

"ये लीजिए चाय, अभी शाम को ही बनाई थी। ज्यादा बन गई थी तो आपके लिए ढ़ँक कर रख दिया था। गरम कर दिया है। और ये रहा एलबम। अब बताइए, नए किरायेदार से उन जालियों के बारे में आपकी क्या बातचीत हुई?" पत्नी ने सामने डाइनिंग-टेबल पर चाय का प्याला और एलबम रखते फरमाया।

"कौन सी जालियाँ?"

"अऽरे, क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं? आप भूल गए? हमने उस मकान के दरवाजे और खिड़कियों पर मच्छर, कीट-पतंगों से बचने वास्ते लोहे की जो जालियाँ लगवा रखीं हैं, उनके बारे में नए किरायेदार से बात करनी थी। अगर नया किरायेदार पैसे नहीं देगा तो हम उन जालियों को किसी दिन उखड़वा लाएँगे। आपने ये भी कहा था?" पत्नी ने जैसे मुझे याद दिलाने की पुरजोर कोशिश की। जबकि मुझे वो जालियाँ, अच्छी तरह याद थीं।

"पर, वो जालियाँ अब हमारे किस काम आएँगी?" मैंने तनिक अन्यमनस्कता सी जताई।

"काम तो नहीं आएँगी। कबाड़ में ही बिकेंगी। लेकिन हम अपनी चीज छोड़ें क्यों? अवनींद्र बाबू भी तो उनके पैसे देने को तैयार नहीं।"

"हाँ... मैं तुम्हें बताना चाह रहा था। ये जो दीदी की शादी में मैंने कोट पहन रखा है न! ये मेरा नहीं है।" मैंने एलबम, जो जगह-जगह से फट गया था, के पन्नों को सँभालते, उलटते, एक फोटो पर उँगली रखी।

"किसका है?"

"तुम्हें जानकर शायद आश्चर्य हो। ये कोट उसी आदमी का है, जो आज अवनींद्र बाबू के उस चौक वाले मकान में किरायेदार है।" चाय पीने के बाद एलबम खोलते, मैंने दीदी की शादी के समय खिंचवाये गए अपने परिवार संग उस तस्वीर में कोट पहने खुद को दिखाते हुए कहा।

"अच्छा...!"

"एक बार तो इंटरव्यू देने के लिए मैंने उससे जूते भी उधार लिए थे।"

"आप उसे कैसे जानते हैं? क्या नाम है उसका?"

"सुशांत। यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के दिनों में वो हॉस्टल में मेरा रूम-पॉर्टनर था। वो मेरे लिए बहुत लकी था। उसके, मुझ पर काफी एहसान हैं। आज वो यहीं यूनिवर्सिटी में लेक्चरर है। उससे यूनिवर्सिटी के दिनों के बारे में ढेर सारी बातें हुईं। किसी दिन पत्नी सहित घर आएगा तो तुम खुद मिल लेना। देखना, कितना अच्छा लड़का है।"

"यानि, उन लोहे की जालियों को अब हम भूल जाएँ?"

"वहाँ बैठे-बैठे, थोड़ी देर के लिए बिजली चली गई, तो सुशांत ने दरवाजे, खिड़कियों के पल्ले खोल दिए। जिससे जरा भी सफ्फोकेशन महसूस नहीं हुआ। बढ़िया हवा आने लगी। दरवाजे, खिड़कियों के पल्लों पर जाली होने के कारण मच्छर, कीट-पतंगे भी नहीं आ रहे थे। वो तो खुले हृदय से जालियाँ लगवाने वाले किरायेदार को धन्यवाद दे रहा था। उस बेचारे को तो ये तक नहीं पता है कि उस मकान के दरवाजे, खिड़कियों के पल्लों पर लोहे की जालियाँ हमने लगवाई हैं।"

"चलिए, ये भी ठीक है। छोड़िए, जाने दीजिए। मैं आपकी मजबूरी समझ सकती हूँ। 'मनुष्य पैदा तो स्वतंत्र हुआ है, मगर हर जगह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।' आप तो अक्सर ही ये उक्ति दुहराते रहते हैं। जाहिर है, वो लोहे की जालियाँ, इनसानी रिश्तों की जंजीर से कमजोर साबित हुईं। फिर... जीवन में किसका एहसान हमें किस रूप में चुकाना पड़ जाए, कौन जानता है?"

"हाँ**...** हवा-प्रकाश के रूप में**?"**

"बेशक**...** कोट और जूतों के रूप में**?"**

"जाहिर है**...** लोहे की जालियों के रूप में भी**...?"**

उस रात हम पति-पत्नी के बीच, सुशांत और उसकी पत्नी के बारे में यूनिवर्सिटी के दिनों की ढेरों स्मृतियों को लेकर ये बहस-विमर्श, रात कितनी देर तक चलता रहा, आज की तारीख में बिलकुल भी याद नहीं।